Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 1 | Issue 4 | (Oct – Dec 2024)

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन और संस्कृति का चित्रण

कविता शुक्ला
आर्य कॉलेज, वाराणसी

परिचय

भारत एक विविधता से भरा हुआ देश है, जहाँ अनेक जातियाँ, समुदाय, भाषाएँ और संस्कृतियाँ सह-अस्तित्व में हैं। इन समुदायों में आदिवासी समाज एक महत्वपूर्ण लेकिन लंबे समय तक उपेक्षित वर्ग रहा है। आदिवासी जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा होता है, परंतु औपनिवेशिक दृष्टिकोण, आधुनिकता और मुख्यधारा की राजनीति ने इनके अस्तित्व, संस्कृति और पहचान को संकट में डाला है। ऐसे में हिन्दी साहित्य, जो सामाजिक यथार्थ का आईना होता है, ने किस प्रकार आदिवासी जीवन को चित्रित किया है – यह अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण और समयसापेक्ष है। आज के वैश्विक और राष्ट्रीय विमर्शों में "हाशिये पर खड़े" समुदायों को केंद्र में लाने की आवश्यकता को प्रमुखता मिल रही है। इसलिए हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन और संस्कृति की प्रस्तुति का मूल्यांकन करना जरूरी हो गया है कि यह चित्रण सहानुभूतिपरक है या वास्तव में उनकी आत्म-अभिव्यक्ति को स्थान देता है।

"आदिवासी" शब्द का अर्थ है – मूल निवासी। भारत में यह समुदाय हजारों वर्षों से अस्तित्व में है और देश के कई राज्यों में फैला हुआ है, जैसे झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, असम, नागालैंड आदि। यह समुदाय अपनी विशिष्ट भाषा, लोकसंस्कृति, धार्मिक परंपराओं और प्राकृतिक जीवन पद्धति के लिए जाना जाता है। इनकी पहचान मुख्यधारा की संस्कृति से भिन्न होते हुए भी बहुत समृद्ध है। परंतु उपेक्षा, शोषण, विस्थापन और विकास के नाम पर इनके अधिकारों का हनन एक सामान्य बात रही है। यही संघर्ष हिन्दी साहित्य के लिए एक चुनौती और अवसर दोनों रहा है – कि वह इन आवाज़ों को कैसे प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक चरणों में आदिवासी जीवन का चित्रण सीमित और अक्सर एक 'दया के पात्र' या 'जंगल में रहने वाले' के रूप में हुआ। प्रेमचंद, रेणु आदि ने ग्रामीण जीवन के साथ-साथ आदिवासी पात्रों को भी चित्रित किया, लेकिन उनका दृष्टिकोण बाहरी था। समकालीन काल में आदिवासी चेतना ने साहित्य में नया मोड़ लिया। अब आदिवासी न केवल पात्र हैं, बल्कि उनकी दृष्टि, भाषा और अनुभव साहित्य के केंद्र में आने लगे हैं। महाश्वेता देवी, राही मासूम रज़ा, विनोद कुमार शुक्ल जैसे रचनाकारों ने आदिवासी जीवन के भीतर जाकर लेखन किया है। साथ ही, आदिवासी लेखकों ने भी अपनी आत्मकथाएँ, कविताएँ और कहानियाँ लिखकर साहित्य को समृद्ध किया है।

आदिवासी जीवन और संस्कृति की विशेषताएँ

आदिवासी समाज सामान्यतः एक सामूहिक और समतामूलक संरचना में विश्वास करता है। इनमें जातिगत या वर्गगत भेदभाव प्रायः नहीं पाया जाता। परिवार और कबीलाई संगठन (क्लान) सामाजिक जीवन का मूल आधार होते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया सामूहिक होती है, और ग्राम सभा (या "गोटुल") जैसे संस्थान पारंपरिक न्याय और सामुदायिक निर्णयों के केंद्र होते हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी एक विशेष सामाजिक संरचना होती है जिसमें वयोक्रम, अनुभव और परंपरागत ज्ञान का सम्मान होता है। बुजुर्गों की भूमिका मार्गदर्शक की होती है, और महिलाएँ भी अनेक मामलों

में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। आदिवासी समाज का रहन-सहन प्रकृति-आधारित होता है। मिट्टी, लकड़ी, बाँस से बने घर, सरल वस्त्र, और वन्य संसाधनों का उपयोग उनके जीवन की सरलता और आत्मनिर्भरता को दर्शाता है। विवाह, जन्म, मृत्यु, फसल कटाई आदि सभी अवसरों पर उनकी परंपराएँ गहरे सांस्कृतिक अर्थों से जुड़ी होती हैं।

त्योहारों का संबंध प्रकृति से होता है जैसे सरहुल, भोमकाल, करमा, माघ परब, आदि। इन त्योहारों में सामूहिक नृत्य, गायन, और उत्सव मनाने की परंपरा होती है, जिसमें पूरा समुदाय भाग लेता है। इनमें देवताओं की पूजा नहीं, बल्कि प्रकृति के तत्वों – वृक्ष, जल, अग्नि, भूमि – का पूजन किया जाता है। भारत में लगभग 750 से अधिक आदिवासी भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें संथाली, गोंडी, हो, भीली, कोरकू, मुण्डारी जैसी प्रमुख भाषाएँ हैं। ये भाषाएँ मौखिक परंपरा में समृद्ध हैं और लोकगाथाओं, कहानियों, गीतों, और मिथकों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होती हैं।

लोकगीत और नृत्य आदिवासी जीवन की आत्मा हैं। गीतों में खेती, प्रेम, युद्ध, शिकार, और प्रकृति की प्रशंसा प्रमुख विषय होते हैं। नृत्य सामूहिक होते हैं, जो पुरुषों और महिलाओं द्वारा मिलकर तालबद्ध रूप से किए जाते हैं – जैसे नागा नृत्य, करमा नृत्य, घुमरा, ढिंढार, आदि। कला में वे दीवार चित्रकला (भील और वारली), काष्ठकला, आभूषण निर्माण, और मिट्टी की मूर्तियाँ बनाते हैं, जो न केवल सौंदर्यबोध को दर्शाते हैं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीक भी होते हैं। आदिवासी जीवन का मूलाधार प्रकृति है। जंगल, पहाड़, नदियाँ, पेड़-पौधे उनके केवल संसाधन नहीं बल्कि पूज्यनीय तत्व होते हैं। उनके विश्वासों में यह निहित होता है कि प्रकृति के साथ संतुलन और सामंजस्य बनाकर ही जीवन संभव है। वे शिकार और कृषि करते हैं, लेकिन अंधाधुंध दोहन से बचते हैं। स्लैश एंड बर्न जैसी कृषि पद्धति (झूम खेती) भी पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखती है। जल-स्रोतों की सफाई, वृक्षों की पूजा, और पारंपरिक औषधीय ज्ञान आदिवासी समाज की पर्यावरणीय चेतना का प्रमाण हैं।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन का आरंभिक चित्रण

हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक दौर में आदिवासी जीवन और संस्कृति को केंद्र में रखकर बहुत कम लेखन हुआ। उस समय साहित्यिक दृष्टिकोण मुख्यतः शहरी, सवर्ण और औपनिवेशिक प्रभाव से प्रेरित था। फिर भी कुछ रचनाकारों ने आदिवासी पात्रों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया, हालांकि वह केवल पृष्ठभूमि के रूप में या सहायक पात्रों तक सीमित थे। **प्रेमचंद** जैसे यथार्थवादी लेखक ने अपने उपन्यासों और कहानियों में सामाजिक विषमता, दलितों और किसानों की पीड़ा को स्वर दिया, परंतु आदिवासी जीवन का चित्रण सीमित रूप में हुआ। उनकी कहानी "ठाकुर का कुआँ" या उपन्यास "गोदान" में ग्रामीण परिवेश तो है, लेकिन आदिवासी समुदाय की विशेष उपस्थिति नहीं है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की रचनाओं में, विशेषकर "मैला आँचल" जैसे उपन्यासों में, ग्रामीण और पिछड़े वर्गों की यथार्थपूर्ण झलक मिलती है। वहाँ कुछ पात्र आदिवासी या उनके जैसे जीवन जीने वाले होते हैं, लेकिन वे न तो कथा के केंद्र में होते हैं, न ही उनकी संस्कृति का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इस काल के साहित्य में आदिवासी पात्र "वंचित", "अज्ञानी", "जंगल के वासी", या कभी-कभी "विद्रोही" रूप में दिखते हैं, लेकिन उनके भीतर की आवाज, सोच या सांस्कृतिक गरिमा को अभिव्यक्ति कम ही मिलती है।

प्रारंभिक हिन्दी साहित्य में आदिवासी पात्रों की छवियाँ प्रायः पूर्वग्रहों से ग्रसित और रूढ़िबद्ध होती थीं। लेखक उनके जीवन को 'वनवासी', 'असभ्य', 'बर्बर' या 'पिछड़े' के रूप में प्रस्तुत करते रहे। यह दृष्टिकोण अक्सर औपनिवेशिक मानसिकता या तथाकथित "सभ्य समाज" की श्रेष्ठताबोध से प्रभावित था। इस दौर में आदिवासी जीवन को रोमांटिक रूप से भी चित्रित किया गया – जैसे कि वे प्रकृति के करीब, भोले-भाले, हिंसारहित और सरल होते हैं – लेकिन यह चित्रण भी वस्तुनिष्ठ नहीं था। इसमें उनकी वास्तविक समस्याएँ, सांस्कृतिक गहराइयाँ, और सामाजिक संघर्ष नदारद रहे।

आदिवासी चेतना का उदय और समकालीन चित्रण

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में साहित्यिक विमर्शों में एक नया मोड़ आया, जब हाशिए पर रखे गए समुदायों – विशेषतः दलितों और आदिवासियों – की समस्याएँ, पहचान और अस्मिता के सवाल साहित्य के केंद्र में आने लगे। दलित-आदिवासी विमर्श ने हिन्दी साहित्य को केवल सामाजिक न्याय की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि वैकल्पिक सौंदर्यबोध, भाषा और संवेदना की दृष्टि से भी समृद्ध किया। आदिवासी विमर्श ने साहित्य में उन आवाज़ों को स्थान दिया जो लंबे समय तक मौन थीं या जिन्हें दूसरों के नजरिए से देखा और समझा गया। यह चेतना केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि स्वानुभूति पर आधारित थी। इस प्रक्रिया में ‘मुख्यधारा’ की परिभाषा ही चुनौती के दायरे में आ गई। आदिवासी विमर्श ने यह स्पष्ट किया कि जब तक आदिवासी स्वयं अपनी बात नहीं कहेंगे, तब तक उनका चित्रण अधूरा और असंतुलित रहेगा। इसने साहित्य को ‘प्रस्तुति’ से आगे जाकर ‘प्रतिनिधित्व’ की दिशा में मोड़ा।

महाश्वेता देवी हिन्दी और बांग्ला साहित्य में आदिवासी चेतना की सबसे सशक्त आवाज़ मानी जाती हैं। उन्होंने झारखंड, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल के आदिवासी समुदायों (संतराल, मुंडा, शबर आदि) के साथ सीधे संवाद कर उनके संघर्षों को साहित्य में स्थान दिया। उनकी कहानियाँ "द्रौपदी", "जंगल के दावेदार", "छोटी सी बात", आदि में आदिवासी महिलाओं की दुर्दशा, नक्सल संघर्ष, पुलिसिया दमन, और राज्य की हिंसा का यथार्थपूर्ण चित्रण मिलता है। **विनोद कुमार शुक्ल** की रचनाओं में आदिवासी जीवन प्रत्यक्ष रूप से बहुत अधिक नहीं है, लेकिन उनकी संवेदनशील भाषा और ग्रामीण चेतना आदिवासी परिवेश की ओर संकेत करती है। उनके उपन्यास "दीवार में एक खिड़की रहती थी" में हाशिये के जीवन की सूक्ष्म छवियाँ मौजूद हैं। **राहुल सांकृत्यायन** जैसे रचनाकारों ने यात्रा-वृत्तांतों और ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी समुदायों के सामाजिक इतिहास की झलक दी। उन्होंने सांस्कृतिक विकास में इन समुदायों की भूमिका को मान्यता दी, और भारत की विविधता को समझने के लिए इनकी संस्कृति को आवश्यक माना।

समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अब आदिवासी पात्र न केवल "कथ्य" हैं, बल्कि "दृष्टि" भी हैं। यानी उनकी अपनी भाषा, संवेदना और अनुभव को केंद्र में रखा जाने लगा है।

कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ:

- आत्मकथात्मक लेखन में आदिवासी लेखक जैसे किशोर कुमार काळूराम, राम दयाल मुण्डा, और अन्य ने अपने अनुभवों को सीधे अभिव्यक्त किया।

- नवीन कहानियों में शोषण, विस्थापन, जंगल की लूट, खनन कंपनियों द्वारा विनाश आदि यथार्थ रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।
- कविताओं में अब आदिवासी लोकबोली, प्रतीक और संघर्ष खुलकर सामने आ रहे हैं। उदाहरणस्वरूप "हम आदिवासी हैं, जंगल हमारी मां है..." जैसे बिंब बार-बार दिखाई देते हैं।

यह साहित्य केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करता, बल्कि प्रतिरोध, अधिकार और गरिमा की मांग करता है। यह समाज के सामने आदिवासी जीवन को केवल करुणा योग्य नहीं, बल्कि गौरवशाली और आत्मनिर्भर रूप में प्रस्तुत करता है।

चयनित रचनाओं का विश्लेषण

(क) महाश्वेता देवी की रचनाएँ

1. "जंगल के दावेदार"

यह उपन्यास झारखंड के संतराल आदिवासी समुदाय के संघर्ष को केंद्र में रखता है। इसमें राज्यसत्ता, नौकरशाही और पूंजीवादी ताकतों के खिलाफ आदिवासी प्रतिरोध को उजागर किया गया है। बिरसा मुंडा जैसे ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से आदिवासी समाज की सामाजिक चेतना, धार्मिक पुनरुत्थान और राजनीतिक आंदोलन का यथार्थ चित्रण मिलता है।

मुख्य विशेषताएँ:

- आदिवासी समाज के भीतर की सामूहिकता और प्रतिरोधी चेतना
- नायकत्व को आदिवासी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना
- ऐतिहासिक तथ्यों और लोककथाओं का सम्मिलन

2. "द्रौपदी" (कहानी)

यह कहानी **'डोपदी मेझेन'**, एक आदिवासी महिला के प्रतिरोध की कथा है, जिसे पुलिस द्वारा नग्न कर के यातनाएँ दी जाती हैं। परंतु वह अंत में प्रतिरोध की प्रतीक बन जाती है – "अपने नग्न शरीर के साथ वह ताकतवर सत्ता के सामने खड़ी होती है"।

मुख्य विशेषताएँ:

- स्त्रीवादी और आदिवासी विमर्श का संयोजन
- राज्य की हिंसा और उसकी सीमाओं को उजागर करना
- नग्नता को कमजोरी नहीं, प्रतिरोध की भाषा बनाना

(ख) अन्य लेखकों की आदिवासी-केंद्रित रचनाएँ

1. राही मासूम रज़ा की "आधा गाँव"

यद्यपि यह उपन्यास मुख्यतः भारत के विभाजन को केंद्र में रखता है, लेकिन ग्रामीण परिवेश में आदिवासी और दलित समुदायों की स्थिति को बारीकी से दिखाया गया है। रज़ा की भाषा में सांस्कृतिक बहुलता और हाशिए की संवेदनाएँ दिखाई देती हैं।

2. नंदा खरे की रचनाएँ (जैसे – "उलटी गिनती")

नंदा खरे विज्ञान और समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से आदिवासी जीवन को "विकास बनाम अस्तित्व" के सवाल में रखते हैं। वे आधुनिकता और बाजार की आलोचना करते हुए आदिवासी संस्कृति की सरलता और आत्मनिर्भरता को उजागर करते हैं।

3. हरिसंह पाल, संजीव, असगर वजाहत जैसे समकालीन लेखक

इन लेखकों की कहानियाँ आदिवासी विषयों पर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से लिखी गई हैं, लेकिन अब वे केवल 'वंचित' नहीं, बल्कि 'लड़ने वाले' और 'सोचने वाले' पात्रों के रूप में चित्रित होते हैं।

(ग) आदिवासी लेखकों की रचनाएँ

1. दया पवार

हालांकि दया पवार मुख्यतः दलित लेखक के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन उनकी आत्मकथा "बालूत" में आदिवासी संवेदना और वर्गीय संघर्ष का सम्मिलन मिलता है। उन्होंने महाराष्ट्र के आदिवासी समुदायों के जीवन की झलक अपनी रचनाओं में दी है।

2. मंगेश डारूकर, हसदा सोबिनेक

हसदा सोबिनेक, एक संथाली आदिवासी लेखक, की कविताओं में आदिवासी जीवन का प्रामाणिक अनुभव मिलता है। वे अपनी मातृभाषा में लिखते हैं और अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रवेश करते हैं। उनकी कविताओं में जंगल, विस्थापन, शिक्षा, और आत्मसम्मान जैसे विषय प्रमुख हैं।

3. सुभाष चंद्र कुशवाहा, राजू लोहार (राजस्थानी आदिवासी कवि)

इन लेखकों ने आदिवासी जीवन को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया है, जहाँ केवल पीड़ा नहीं, बल्कि सौंदर्य, संघर्ष और भविष्य की आकांक्षा भी दिखाई देती है।

चयनित रचनाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आदिवासी जीवन का चित्रण अब बाहरी सहानुभूति तक सीमित नहीं है। आज वह अपनी भाषा, विचार और संघर्ष के साथ साहित्य के केंद्र में उपस्थित है। महाश्वेता देवी जैसी लेखिकाओं ने जहां उस संघर्ष को मुख्यधारा में लाया, वहीं स्वयं आदिवासी लेखकों ने अपनी पहचान और संस्कृति को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है। यह साहित्य अब केवल 'प्रतिनिधित्व' नहीं, बल्कि 'सामाजिक परिवर्तन' का औजार बनता जा रहा है।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी स्वर की विशिष्टता

हिन्दी साहित्य में आदिवासी विषयों की प्रस्तुति की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता तब सामने आती है जब आदिवासी समुदाय स्वयं अपने अनुभवों को स्वर देते हैं। इस 'भीतर' की आवाज़ ने साहित्य को केवल विषयगत नहीं, बल्कि दृष्टिगत रूप से भी नया बनाया है। यह अनुभूति बाहरी सहानुभूति से नहीं, स्वानुभूति से उत्पन्न होती है।

(क) आत्मकथात्मक साहित्य और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति

आदिवासी स्वर की सबसे सशक्त उपस्थिति आत्मकथात्मक साहित्य में दिखाई देती है। इस विधा के माध्यम से लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सामूहिक पीड़ा और चेतना में रूपांतरित करते हैं। स्वानुभूति पर आधारित लेखन न केवल यथार्थ को अधिक गहराई से पकड़ता है, बल्कि सत्ता और व्यवस्था की जड़ता को भी चुनौती देता है। आदिवासी लेखक अब यह नहीं चाहते कि कोई और उनकी 'कहानी' कहे; वे स्वयं अपने जीवन की कथा, संघर्ष और सपनों को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

(ख) बहिष्कृत दृष्टिकोण से मुख्यधारा की आलोचना

आदिवासी स्वर न केवल अपनी पहचान की स्थापना करता है, बल्कि वह मुख्यधारा की आलोचना भी करता है – खासकर उस साहित्य और सत्ता की, जो आदिवासियों को केवल एक 'अन्य' के रूप में देखती है।

इस आलोचना में तीन प्रमुख बिंदु उभरते हैं:

1. **विकास बनाम विस्थापन** – तथाकथित विकास परियोजनाओं ने आदिवासी क्षेत्रों को उजाड़ा है।
2. **शैक्षिक व सांस्कृतिक उपेक्षा** – आदिवासी भाषाओं, लोककला, और परंपराओं को "असभ्य" मानकर खारिज किया गया।
3. **साहित्य में एकांगी चित्रण** – आदिवासी पात्रों को या तो सहानुभूति का पात्र या हिंसक विद्रोही के रूप में दर्शाया गया, न कि एक संपूर्ण मानव के रूप में।

आज का आदिवासी साहित्य **मुख्यधारा के वर्चस्वशाली आख्यानों** को खंडित करता है और एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसमें उनकी संस्कृति, ज्ञान और दृष्टि को सम्मान दिया जाता है।

(ग) भाषायी, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान

आदिवासी साहित्य की एक अन्य विशिष्टता इसकी बहुभाषिकता और सांस्कृतिक विविधता है। भारत के आदिवासी समुदाय सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोलते हैं, जिनमें उनका मौखिक साहित्य अत्यंत समृद्ध है।

समकालीन आदिवासी रचनाकार इन भाषाओं की ताकत को समझते हुए अपनी रचनाओं में स्थानीय प्रतीकों, मिथकों, और मुहावरों को प्रयोग में ला रहे हैं। इससे हिन्दी साहित्य का भाषा-संसार अधिक विविध और जीवन्त हुआ है।

उदाहरणतः:

- संथाली, गोंडी, भीली आदि भाषाओं से अनूदित रचनाएँ हिन्दी में एक नया सौंदर्यबोध लेकर आई हैं
- लोकगीत, लोककथा, और मिथकीय संरचनाओं का समावेश अब केवल "लोक-संग्रह" तक सीमित नहीं, बल्कि साहित्यिक अभिव्यक्ति का अंग बन गया है

इस प्रकार, आदिवासी स्वर हिन्दी साहित्य को एक बहुस्तरीय, बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक मंच में परिवर्तित कर रहा है।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी स्वर की विशिष्टता उसकी स्वानुभूति, प्रतिरोध और सांस्कृतिक पुनर्स्थापन में निहित है। यह साहित्य केवल किसी वंचित समुदाय की आवाज नहीं, बल्कि मनुष्यता की विविधता, प्रकृति से जुड़ी दृष्टि और न्याय आधारित चेतना का वाहक है। यह मुख्यधारा को एक नया 'मुख्य' बनने की चुनौती देता है – जिसमें सबकी जगह हो।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण

(क) हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन के चित्रण की सीमाएँ और पूर्वग्रह

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण निश्चित रूप से एक सामाजिक-राजनीतिक विकास रहा है, लेकिन इसके भीतर अनेक सीमाएँ और पूर्वग्रह भी दृष्टिगत होते हैं:

1. **बाहरी दृष्टिकोण का वर्चस्व:** अधिकतर रचनाएं आदिवासी जीवन को 'बाहर से देखने' की प्रवृत्ति से ग्रस्त रही हैं। लेखक अक्सर अपने अनुभव से नहीं, बल्कि कल्पना या शोध के आधार पर आदिवासी जीवन को प्रस्तुत करते हैं। इससे चित्रण प्रामाणिक होने के बजाय अजनबी, या अतिरंजित हो जाता है।
2. **दया और करुणा की भाषा:** कई रचनाओं में आदिवासी पात्रों को "बेचारे", "भोले-भाले", "लाचार" रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण सहानुभूतिपरक भले हो, लेकिन यह समानता और सम्मान की भावना नहीं देता।
3. **आदिवासी स्त्रियों का चित्रण:** आदिवासी स्त्रियों को अक्सर या तो अत्याचार की प्रतीक के रूप में, या फिर 'प्राकृतिक यौनता' से जोड़कर दर्शाया गया है। इसमें उनकी स्वायत्तता और मानसिक जटिलता को कम स्थान मिलता है।
4. **लोक-संस्कृति की सजावटी प्रस्तुति:** आदिवासी संस्कृति को कई बार केवल "फोक" या "लोकजीवन" के रंग-बिरंगे चित्रों तक सीमित कर दिया गया, जिससे उनकी राजनीतिक चेतना और सामाजिक संघर्ष की अनदेखी हुई।
5. **राज्य और व्यवस्था की आलोचना का अभाव:** अनेक रचनाएँ आदिवासी जीवन को केवल पीड़ित रूप में प्रस्तुत करती हैं, परंतु उनके शोषण के कारणों जैसे खनन कंपनियाँ, विस्थापन, सरकारी दमन की आलोचना से बचती हैं।

(ख) प्रतिनिधित्व का प्रश्न: "उनके बारे में" बनाम "उनके द्वारा" यह प्रश्न आज आदिवासी विमर्श के **मूल में** है: क्या आदिवासी समुदाय को केवल एक विषय के रूप में देखा जाए ("उनके बारे में") या उन्हें **स्वयं अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने का मंच मिले** ("उनके द्वारा")?

"उनके बारे में" बहुसंख्यक का दृष्टिकोण:

- पारंपरिक रूप से हिन्दी साहित्य में आदिवासी समुदाय को गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।
- इसमें अनुभव की बजाय कल्पना, और वास्तविकता की बजाय प्रतीकात्मकता अधिक होती है।
- भले ही इन रचनाओं में सहानुभूति हो, लेकिन वे **स्वायत्तता नहीं देतीं।**

"उनके द्वारा" आत्म-संवेदित दृष्टिकोण:

- जब आदिवासी लेखक स्वयं लिखते हैं, तो उनका लेखन जीवन से जुड़ा, आत्मीय और अनुभवजन्य होता है।
- यह साहित्य सत्ता, भाषा, धर्म, और जाति के सवालों को उनकी अपनी भाषा और अनुभव से संबोधित करता है।
- ऐसे लेखन में प्रतिरोध केवल वैचारिक नहीं, **सांस्कृतिक और दार्शनिक** भी होता है।

प्रासंगिक उदाहरण:

- महाश्वेता देवी का लेखन यद्यपि "बाहरी" है, परंतु उनका गहन संवाद और पक्षधरता इसे "भीतर का" स्वर देती है।
- वहीं हसदा सोबिनेक, राम दयाल मुण्डा, जैसे लेखक आदिवासी आत्म-प्रस्तुति के उदाहरण हैं।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी चित्रण की आलोचना इस बात की माँग करती है कि अब केवल 'विषय' के रूप में आदिवासी जीवन को न देखा जाए, बल्कि **लेखन में उनके अपने स्वरों को प्राथमिकता मिले**। 'प्रतिनिधित्व' केवल नाममात्र का नहीं, अनुभवात्मक और वैचारिक स्तर पर होना चाहिए। तभी साहित्य सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक समानता का सचमुच वाहक बन सकेगा।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण समय के साथ परिवर्तनशील रहा है। प्रारंभिक दौर में यह चित्रण सीमित, रूढ़िबद्ध और बाहरी दृष्टिकोण से प्रेरित था, जबकि समकालीन साहित्य में यह अधिक संवेदनशील, यथार्थपरक और आत्मीय रूप से प्रस्तुत होने लगा है। **महाश्वेता देवी जैसी लेखकों ने** आदिवासी जीवन को मुख्यधारा में लाने और उसे गरिमा प्रदान करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। वहीं समकालीन लेखक आदिवासी जीवन को प्रतिरोध और अस्मिता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। **स्वानुभूति आधारित लेखन** ने साहित्य को एक नया आयाम दिया है। जब आदिवासी लेखक स्वयं अपने अनुभव को अभिव्यक्त करते हैं, तो वह लेखन केवल साहित्यिक नहीं, सांस्कृतिक और

राजनीतिक हस्तक्षेप भी बन जाता है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी चित्रण की **कुछ स्थायी सीमाएँ** आज भी विद्यमान हैं जैसे सहानुभूति के नाम पर प्रस्तुति, लोक-संस्कृति का सतही उपयोग, और आत्मप्रदत्त दृष्टिकोण का अभाव।

9. संदर्भ सूची

1. महाश्वेता देवी जंगल के दावेदार
2. महाश्वेता देवी द्रौपदी (कहानी-संग्रह: स्त्री कथा)
3. राहुल सांकृत्यायन वोल्गा से गंगा
4. फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल
5. राही मासूम रज़ा आधा गाँव
6. विनोद कुमार शुक्ल दीवार में एक खिड़की रहती थी
7. दया पवार बालूत (अनुवादित मराठी आत्मकथा)
8. नंदा खरे उलटी गिनती (अनुवादित मराठी से हिन्दी)
9. नामवर सिंह आलोचना और विमर्श
10. रामनारायण सिंह हिन्दी साहित्य और आदिवासी विमर्श
11. अनुज लुगुन आदिवासी अस्मिता और साहित्यिक दृष्टिकोण
12. अपूर्वानंद हाशिये का समाज और साहित्य
13. प्रभाकर श्रोत्रिय हिन्दी में उपेक्षित समाज का चित्रण
14. मधुकर सिंह (संपादक) आदिवासी साहित्य: विमर्श और मूल्यांकन
15. हंस (विशेषांक: आदिवासी साहित्य, जनवरी 2012)
16. समकालीन भारतीय साहित्य (एनसीपीयूएल, नयी दिल्ली – आदिवासी विशेषांक)
17. इंडियन लिटरेचर, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली (Santhali Literature Issue)
18. डॉ. मीना सिंह "हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श की प्रवृत्तियाँ", भारतीय साहित्य समीक्षा, 2021
19. डॉ. राजीव रंजन "प्रतिनिधित्व और आत्मविमर्श: आदिवासी लेखन की सच्चाइयाँ", साहित्य संदर्भ, 2020
20. साहित्य अकादमी की वेबसाइट (https://sahitya-akademi.gov.in)
21. आदिवासी साहित्य मंच (https://adivasisahityamanch.in)